International Journal of Hindi Research
www.hindijournal.com
ISSN: 2455-2232
Received: 18-11-2025, Accepted: 17-12-2025, Published: 01-01-2026
Volume 12, Issue 1, 2026, Page No. 1-4

स्त्री लेखन परम्परा एवं मनीषा कुलश्रेष्ठ: कथा साहित्य के सन्दर्भ में

हिमांशु नागदा[1], डॉ विजयलक्ष्मी पोद्दार[2]
[1] शोधार्थी, हिंदी विभाग, तुलनात्मक भाषा एवं संस्कृति अध्ययनशाला, देवी अहिल्या विश्वविद्यालय, इंदौर, मध्य प्रदेश, भारत
[2] शोध निर्देशक, प्रोफेसर एवं विभागाध्यक्ष, हिंदी विभाग, एम. के. एच. एस. गुजराती गर्ल्स कॉलेज, इंदौर, मध्य प्रदेश, भारत
DOI: https://doi.org/10.66856/ijhr.2026.12.1.11162

सारांश
यह शोधपत्र हिंदी साहित्य में स्त्री साहित्यकारों के ऐतिहासिक विकास, वैचारिक विस्तार और रचनात्मक रूपांतरण का समग्र अध्ययन प्रस्तुत करता है। अध्ययन से यह स्पष्ट होता है कि स्त्री लेखन की परंपरा नवजागरण या आधुनिक काल से प्रारंभ नहीं हुई है। इसकी जड़ें वैदिक ऋषिकाओं, बौद्ध थेरीगाथा और मध्यकालीन स्त्री–भक्ति परंपरा से जुड़ी हैं। आधुनिक गद्य के विकास के साथ स्त्री लेखन ने कहानी और उपन्यास के माध्यम से सामाजिक यथार्थ, एवं स्त्री–अस्मिता को केंद्र में रखा। स्वाधीनता–पूर्व लेखिकाओं ने सुधारवादी दृष्टि से स्त्री की सक्रिय भूमिका को रेखांकित किया, जबकि स्वाधीन भारत के समकालीन दौर में स्त्री लेखन अधिक आत्मबोध, मनोवैज्ञानिक गहराई और सामाजिक आलोचना से जुड़ा। हालांकि इस क्रम में महादेवी वर्मा ने स्त्री विमर्श को सैद्धांतिक एवं परिपक्व आधार प्रदान किया तथा समकालीन स्त्री रचनाकारों ने अपने कथा साहित्य से स्त्री अनुभवों को व्यापक स्तर पर सामाजिक–राजनीतिक संदर्भों में व्यक्त किया। इक्कीसवीं सदी में मनीषा कुलश्रेष्ठ का लेखन स्त्री को स्मृति, गरिमा और पुनर्निर्माण की चेतना से युक्त एक सक्रिय सत्ता के रूप में प्रस्तुत करता है। शोधपत्र यह स्थापित करता है कि हिंदी स्त्री लेखन केवल प्रतिरोध का साहित्य नहीं, बल्कि सामाजिक, सांस्कृतिक और वैचारिक पुनर्संरचना की सशक्त परंपरा है।

मूल शब्दः स्त्री विमर्श, साहित्यकार, कथा साहित्य, लेखन परम्परा, मनीषा कुलश्रेष्ठ

प्रस्तावना
भारत में स्त्री चेतना का व्यापक प्रस्फुटन प्रायः नवजागरण काल से माना जाता है, किंतु इससे पूर्व भी अनेक महिलाओं ने अपनी संवेदनाओं, संघर्षों और जीवन अनुभवों को साहित्य के माध्यम से स्वर दिया था। आदिकाल और मध्यकाल की अनेक स्त्रियाँ अपनी पीड़ाओं और इच्छाओं को शब्दों में संजोकर कहीं प्रत्यक्ष, कहीं परोक्ष रूप से प्रतिरोध दर्ज कराती आई हैं। स्त्री रचनाशीलता की प्राचीनता स्वयं वैदिक साहित्य से प्रमाणित होती है, जहाँ कई ऋषिकाओं द्वारा रचित मंत्र आज भी उपलब्ध हैं। छठी शताब्दी में पालि भाषा में रचित बौद्ध ग्रंथ 'थेरीगाथा' में सम्मिलित भिक्षुणियों के अनुभव–वर्णन न केवल भारत की, बल्कि विश्व की प्रारंभिक स्त्री लेखन परंपरा का अद्वितीय उदाहरण हैं। ये रचनाएँ उस समय भी स्त्री के स्वतंत्र चिंतन और आत्मबोध की उपस्थिति दर्शाती हैं। प्रसिद्ध साहित्यकार ममता कालिया के अनुसार "स्त्री–लेखन स्त्री के लिए मुक्ति के प्रयासों का एक द्वार है, अनुभूति और अभिव्यक्ति का द्वार। दूसरे शब्दों में स्त्री लेखन के साथ ही स्त्री विमर्श का समय भी आरंभ होता है। पुरुषों द्वारा लिखी अपनी कथा और गाथा स्त्री को अधूरा इतिहास लगती है। इसलिए कभी मीरा के रूप में, कभी अज्ञात हिंदू महिला के रूप में वह अपनी असमान स्थिति पर विचार करती है और पुरुषवादी समय में अपना सत्याग्रह दर्ज करती है।"[1]

आधुनिक काल में गद्य के विकास ने स्त्रियों को अभिव्यक्ति के नए आयाम दिए। कविता के समान ही कहानी और उपन्यास भी स्त्री–लेखन के लिए महत्वपूर्ण माध्यम बने और महिलाओं की सक्रिय भागीदारी ने हिंदी गद्य को समृद्ध किया। हिंदी कथा साहित्य के उदीयमान दौर में स्वतंत्रता पूर्व की कई स्त्री लेखिकाएँ प्रमुखता से सामने आई। जैसे बंगमहिला (राजेंद्रबाला घोष), यशोदा देवी, प्रियंवदा देवी, शारदा कुमारी देवी, अबला पतिप्राणा साध्वी, सरस्वती गुप्ता, हेमंत कुमारी चौधरी, ब्रह्मकुमारी दुबे, रुक्मिणी देवी, हुक्मदेवी गुप्ता, लीलावती देवी, विमला देवी चौधरानी, राजरानी देवी, जनकदुलारी देवी, मनोरमा देवी, चंद्रप्रभा मेहरोत्रा, शिवरानी देवी, उषा देवी मित्रा, कमला चौधरी, होमवती देवी, सत्यवती मल्लिक, चंद्रवती ऋषभचरण जैन, कमला चौधरी, सुमित्रा कुमारी सिन्हा, महादेवी वर्मा, सुभद्रा कुमारी चौहान आदि। इस दौर की प्रमुख लेखिका राजेंद्रबाला घोष 'बंग महिला' ने उस समय प्रचलित ऐय्यारी और तिलिस्म केंद्रित मनोरंजनपरक उपन्यासों से अलग हटकर, समाज और जीवन के यथार्थ को अपनी कहानियों में स्थान दिया। उनके साथ ही सक्रिय यशोदा देवी ऐतिहासिक कथानक आधारित कहानियाँ लिखने वाली प्रथम लेखिकाओं में मानी जाती हैं। 'सुबोध बालिका', 'सच्ची माता', 'वीर पत्नी', 'चित्तौड़ की चिता' और 'भारत का नारी इतिहास' उनकी पठनीय रचनाओं में शामिल हैं। इसी काल में कई अन्य लेखिकाओं ने भी अपने उपन्यासों और कहानियों के माध्यम से स्त्री के अस्तित्व को केंद्रभूमि में रखा। सरस्वती गुप्ता का 'राजकुमार', साध्वी पतिप्राणा अबला का 'सुहासिनी', तथा प्रियंवदा देवी का 'लक्ष्मी'। ये सभी उस समय की राजनीतिक, धार्मिक और सामाजिक परिस्थितियों में स्त्री के संघर्षों को सामने लाते हैं। उपदेशात्मक शैली होने के बावजूद इन कृतियों में स्त्री की स्वतंत्र सत्ता और उसकी आत्मविश्वसिता प्रमुख लक्ष्य के रूप में उभरती है। जैसा कि कहा गया है, "इन उपन्यासों की खूबी है कि स्त्रियाँ गुणी हैं। बुद्धि कौशल एवं वाक्पटुता इनकी प्रमुख विशेषताएं हैं। स्त्री परिवार में सक्रिय है और परिवार की धुरी हैं। इनमें स्त्री के विद्रोही स्वरूप के बजाय समस्याओं को सुलझाने वाली इमेजों का रूपायन हुआ है। ये ऐसी स्त्रियाँ हैं जो सामाजिक उत्थान की प्रतीक हैं।"[2] हेमंत कुमारी चौधरी के 'आदर्श माता' और 'जागरण' उपन्यासों में स्त्री शिक्षा, बाल विवाह और विभिन्न सामाजिक कुरीतियों पर विचारपूर्ण दृष्टि मिलती है। वहीं ऊषा देवी मित्रा ने राष्ट्रवादी चेतना के साथ–साथ समाज–सुधार की दिशा में कथा लेखन किया। बाल विवाह, विधवा की पीड़ा, वेश्या जीवन और परित्यक्ता स्त्रियों की स्थितियों को उन्होंने विशेष रूप से उभारा। उनकी प्रमुख कृतियाँ—'वचन का मोल', 'आवाज़' और 'जीवन की मुस्कान' हैं। आधुनिक संवेदना और मनोजागृति को कथा में लाने वाली महत्वपूर्ण लेखिका कमला चौधरी हैं। वे

मनोवैज्ञानिक–यथार्थवादी कहानियों की समर्थ सर्जक थीं। 'पीड़ा की खोज' तथा 'देश की चिंता में' उनके प्रसिद्ध उपन्यास हैं, जबकि 'उन्माद', 'पिकनिक', 'यात्रा' और 'बेलपत्र' उल्लेखनीय कहानी संग्रह हैं। होमवती देवी के लेखन में राष्ट्र, परिवार और सामाजिक व्यवस्थाओं से जुड़े प्रश्नों की गहन पड़ताल मिलती है। 'निःसर्ग' (1939), 'धरोहर' (1946), 'स्वप्न–भंग' (1948) और 'अपना घर' (1950) उनके लोकप्रिय संग्रह हैं, जिनमें आत्मकथात्मक शैली की उपस्थिति विशेष रूप से देखी जाती है। इसी क्रम में सत्यवती देवी के 'दो फूल', 'वैशाख की रात', 'दिन–रात' तथा 'नारी हृदय की साध' चर्चित कृतियाँ हैं। उनके बारे में जगदीश्वर चतुर्वेदी ने कहा गया है, "सत्यवती जी ने स्त्री के दुखों के रूपायन पर जोर देने की बजाय उसकी सौंदर्यनुभूति और श्रम साधना को बुनियादी रूप में सामने रखा है।"[3] समकालीन कथा परंपरा में शिवरानी देवी भी अत्यंत प्रभावशाली रहीं। उन्होंने दहेज, बहुविवाह, विधवा पुनर्विवाह, पितृसत्तात्मक अन्याय और घरेलू रूढ़ियों पर प्रहार करते हुए 'कौमुदी' और 'नारी हृदय' जैसी कृतियों की रचना की।

स्त्री विमर्श को सिद्धांत–आधारित दिशा देने में महादेवी वर्मा का योगदान अतुलनीय है। उनकी चर्चित कृति 'शृंखला की कड़ियाँ', जिसमें बीसवीं शताब्दी के तीसरे–चौथे दशकों में लिखे गए निबंध संकलित हैं—हिंदी स्त्रीवादी लेखन का आधारभूत दस्तावेज मानी जाती है। उनका गद्यविवेक, कविता के समान ही विमर्श को प्रखरता प्रदान करता है। उनकी अन्य महत्त्वपूर्ण गद्य–कृतियाँ— 'साहित्य की आस्था तथा अन्य निबंध', 'मेरे प्रिय संभाषण', 'भारतीय संस्कृति के स्वर' और 'क्षणदा'। स्त्री साहित्य को आलोचनात्मक और वैचारिक आधार प्रदान करती हैं। जैसा कि आलोचक जगदीश्वर चतुर्वेदी का मत है— "महादेवी वर्मा के आलोचनात्मक गद्य को हिंदी का पहला स्त्रीवादी साहित्यशास्त्र भी कह सकते हैं। महादेवी जी से पहले किसी लेखिका ने इतने व्यापक पैमाने पर साहित्य संबंधी समस्याओं, मूल्यांकन के प्रश्नों पर विस्तार से विचार नहीं किया। महादेवी जी ने समीक्षा मानदंडों की रचना करते समय 'बुद्धिवृत्ति' एवं 'रागात्मिका वृत्ति' के बीच के अंतर्संबंधों को रेखांकित किया। भावक्षेत्र एवं ज्ञानक्षेत्र की एकता के जरिए सत्य के अनुसंधान को साहित्य का लक्ष्य बनाया।"[4] इसी परंपरा को आगे बढ़ाते हुए सुभद्रा कुमारी चौहान ने 'बिखरे मोती', 'उन्मादिनी' और 'सीधे–साधे चित्र' में राष्ट्रवाद और स्त्री–यथार्थ की गहन अनुभूतियाँ प्रस्तुत कीं।

स्वाधीनता–पूर्व हिंदी स्त्री लेखन में राष्ट्र–सगर्व भावनाओं के साथ–साथ महिलाओं के सामाजिक संदर्भों, राजनीतिक प्रभावों और कुरीतियों के विरोध का सशक्त स्वर मिलता है। इस संदर्भ में सुजाता लिखती हैं, "हिन्दी कविता के ये दो पुरखिनें अपनी स्त्री पहचान और चेतना में कई स्वातंत्र्योत्तर कवयित्रियों से आगे ठहरती हैं और अपने लेखन–कर्म की सही आलोचना के लिए लगभग एक शताब्दी का इंतजार करती हैं।"[5]

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद का काल कथा साहित्य के लिए संक्रमण का समय था। इस दौर में स्त्री लेखन अपनी प्रखरता और परिपक्वता के साथ उभर कर सामने आया। महिला कथाकारों की रचनाओं में नारी के संघर्ष, विभाजन की पीड़ा, जनमानस की भावनाएँ, सामाजिक अस्थिरता और भविष्य की अनिश्चितता जैसे यथार्थपूर्ण विषय प्रमुख रूप से दिखाई देते हैं। इसी समय नारी–जागरण और स्त्री शिक्षा के प्रसार ने महिला लेखन को नई दिशा दी, जिसके परिणामस्वरूप सशक्त महिला कथाकारों की एक नई पीढ़ी साहित्य में स्थापित हुई।

स्वातंत्र्योत्तर से लेकर इक्कीसवीं सदी के प्रारंभिक दो दशकों की सशक्त लेखिकाओं में मन्नू भंडारी, कृष्णा सोबती, उषा प्रियवंदा, राजी सेठ, मृदुला गर्ग, शिवानी, ममता कालिया, नमिता सिंह, मृणाल पांडे, चित्रा मुद्गल, प्रभा खेतान, सिम्मी हर्षिता, कुसुम अंसल, सुर्यबाला, पुष्पा सक्सेना, नासिरा शर्मा, मैत्रेयी पुष्पा, गीतांजलि श्री, शशिप्रभा शास्त्री, मंजुल भगत, मणिका मोहिनी, मीरा सीकरी, सुधा अरोडा, अलका सरावगी, महुआ माँजी तथा नीलाक्षी सिंह, क्षमा शर्मा, कंचनलता सब्बरवाल, उषा महाजन, शांता सक्सेना, हीरावती चतुर्वेदी, हेमलता पंत, शिबोला रानी माथुर, चंद्रप्रभा द्विवेदी, सावित्री निगम, नीता परांजपे, जयदेवी पांडेय, कुसुमलता वर्मा, देवयानी, रमणिका गुप्ता, रमा सिंह, रागिनी मालवीय, सारा राय, कविता पांडेय, संजना कोल, ऋता शुक्ला, सरयू शर्मा, कनकलता, प्रभा दिक्षित, उषा किरण खान, अर्चना वर्मा, रेखा, राज्यश्री पांडे, सुमति अय्यर, इंदिरा राय, पुष्पा सिंह, कमला चमोला, चंद्रकांता, प्रेमिला, विभारनी, शांता सिन्हा, आभा गुप्ता, आभा दयाल, अलका पाठक, जया जादवानी, मनीषा कुलश्रेष्ठ, सुरभि पांडेय, वंदना प्रसाद, लक्ष्मी कण्णन, संतोष गोयल, अल्पना लवलीन, प्रतिभा, निर्मला भुराडिया, ज्योत्स्ना मिलन, मुक्ता, मंजू सक्सेना, प्रमिला ओबेराय, निलिमा सिन्हा, तेजी ग्रोवर, मीनाक्षी पुरी, कल्पना सिंह, सरिता सूद, मेहरुन्निसा परवेज, राजश्री राय, मालती जोशी, दीप्ति खण्डेलवाल, रजनी परीकर, अमृता प्रीतम, रूकैया सखावत हुसैन, उर्मिला शिरीष, पद्मा सचदेव, नमिता सिंह, कमल कुमार, सुशीला टाकभोरे, नीरजा माधव, जयंती रंगनाथन, सुनीता जैन, गगल गिल, सुषम वेदी, सरस्वती प्रसाद, पुष्पा भारती, पूर्णिमा, सुदर्शन प्रियदर्शिनी, कविता, अनामिका, शरद सिंह, उषा राजे, चन्द्रकिरण सौनरिक्सा आदि का विशेष योगदान रहा है।

शशिप्रभा शास्त्री के कथा–संसार में स्त्री जीवन की विविध स्थितियों, उसकी अंतर्निहित पीड़ा, संघर्ष और आत्मबोध का सशक्त चित्रण मिलता है। उनकी प्रमुख रचनाएँ 'अमलतास', 'सीढ़ियाँ', 'कर्करेखा' तथा 'ये छोटे महायुद्ध' स्त्री की संवेदना और अस्तित्व की खोज को केन्द्र में रखती हैं। इस सन्दर्भ में डॉ. शशिप्रभा कहती है, "स्त्री जब अपनी कहानी खुद लिखती है, तो वह केवल व्यक्ति नहीं, एक विचार बन जाती है।"[6] दीप्ति खण्डेलवाल ने अपने उपन्यासों 'प्रिया', 'कोहरे में वह तीसरा' और 'प्रतिध्वनियाँ' में नारी–मन की सूक्ष्मताओं तथा स्त्री–पुरुष संबंधों की मनोवैज्ञानिक जटिलताओं का प्रभावशाली विश्लेषण किया है। किंतु इन प्रतिभाशाली लेखिकाओं को उनके रचनात्मक योगदान के अनुरूप सम्मान नहीं मिला। उनके लेखन को "घरेलू" या "व्यावसायिक" कहकर सीमित कर दिया गया। इस संदर्भ में ममता कालिया लिखती हैं कि "प्रतिभावान लेखिकाओं की एक समूची पीढ़ी इन ठप्पों का शिकार हुई, जैसे शिवानी, शशिप्रभा शास्त्री, मालती जोशी, बसंत प्रभा, दीप्ति खण्डेलवाल आदि। इन्हें हाशिए पर डालने वाले भूल गए कि इन्होंने एक समय में बड़ी अहम भूमिका का निर्वाह किया। विशेषकर शिवानी ने अपने धारावाहिक उपन्यासों से आम पाठकों में हिंदी कथा–कहानी के प्रति रुचि जागृत की। उन्होंने वस्तुतः कहानी को जंगल से जनता तक ढोया।"[7] मन्नू भण्डारी ने अपने प्रसिद्ध उपन्यास 'महाभोज' में समकालीन राजनीति के षड्यंत्रों और सामाजिक विडंबनाओं का यथार्थ उद्घाटन किया है, जबकि 'आपका बंटी' में पारिवारिक टूटन और बाल–मन की संवेदनाओं का गहन चित्रण मिलता है। ऊषा प्रियंवदा ने 'पचपन खंभे लाल दीवारें', 'रुकोगी नहीं राधिका' और 'शेष यात्रा' के माध्यम से आधुनिक स्त्री की मानसिक यंत्रणा और आत्म–संघर्ष को गहराई से व्यक्त किया है। राजी सेठ के 'तत्सम' में बसुधा नामक नायिका के माध्यम से नारी स्वतंत्रता और आत्मसत्ता का प्रश्न उभरता है। मृदुला गर्ग के 'चितकोबरा', 'कठगुलाब' और 'मिलजुल मन' उपन्यासों में स्त्री–विमर्श का वैचारिक व सौंदर्यात्मक स्वर अत्यंत प्रखर रूप में अभिव्यक्त हुआ है।

ममता कालिया ने अपनी कृतियों 'बेघर', 'एक पत्नी के नोट्स', 'अँधेरे का ताला' और 'दुक्खम–सुक्खम' के माध्यम से पारिवारिक दायरे से बाहर निकलकर व्यापक सामाजिक–राजनैतिक संदर्भों को कथा के केंद्र में रखा है। चित्रा मुद्गल ने 'एक ज़मीन

अपनी' में विज्ञापन जगत में स्त्री–शोषण की परतें खोली हैं, जबकि 'आँवा' में बंबई के मजदूर वर्ग के संघर्षों की गाथा प्रस्तुत की है। प्रभा खेतान के 'छिन्नमस्ता' और 'अपने–अपने चेहरे' स्त्री जीवन की गहरी त्रासदी और सामाजिक विसंगतियों के मार्मिक दस्तावेज़ हैं। मैत्रेयी पुष्पा ने 'चाक' और 'इदन्नमं' में ग्रामीण पृष्ठभूमि की स्त्रियों की चेतना को सामाजिक यथार्थ के साथ जोड़ा है। गीतांजलि श्री ने 'हमारा शहर उस बरस', 'तिरोहित', 'माई' और 'रेत समाधि' जैसे उपन्यासों में कथ्य और शिल्प दोनों स्तरों पर नवीनता स्थापित की है। 'रेत समाधि' के अंग्रेजी अनुवाद 'टॉम्ब ऑफ सैंड' को अंतरराष्ट्रीय बुकर पुरस्कार प्राप्त हुआ, जिसने हिंदी साहित्य को वैश्विक मंच पर नई पहचान दी। मधु कांकरिया के 'सलाम आखिरी', 'सेज पर संस्कृति' और 'सूखते चिनार' में समाज की उपेक्षित परतें वेश्या जीवन, धार्मिक आडंबर और स्त्री–शोषण गहराई से उभरती हैं। अलका सरावगी के 'कलिकथा वाया बाइपास', 'शेष कादम्बरी', 'कोई बात नहीं', 'एक ब्रेक के बाद' और 'जानकीदास तेजपाल मैनशन' जैसे उपन्यासों में शहरी जीवन की जटिलताएँ और वैचारिक प्रवृत्तियाँ दिखाई देती हैं। अनामिका ने 'दस द्वारे का पिंजरा' और 'तिनका तिनके पास' के माध्यम से स्त्री प्रश्नों को सांस्कृतिक और आध्यात्मिक धरातल पर उठाया है। महुआ माँजी का 'मैं बोरिशइल्ला' बांग्लादेश के मुक्ति संग्राम की पृष्ठभूमि पर आधारित है, जबकि 'मरंगगोणा नीलकंठ हुआ' जादूगोड़ा में यूरेनियम खनन की त्रासदी को उजागर करता है। नीलाक्षी सिंह का 'खेला' नवसाम्राज्यवाद के बढ़ते विस्तार का रूपक है; उनके कहानी संग्रह 'परिंदे का इंतज़ार सा कुछ' और 'जिनकी मुट्ठियों में सुराख था' को आलोचकों द्वारा अत्यधिक सराहा गया है।

ममता कालिया का कथन है, "बीसवीं शताब्दी के अंतिम दशक तक आते–आते हमें अलका सरावगी, गीतांजलि श्री, और नीलाक्षी सिंह की रचनाओं में परिवर्तन की आहट सुनाई देने लगती है। कथा अथवा वृतांत कहने से ढंग में एक नया तेवर और मिजाज है जो उन्हें सदी के छठे–सातवें दशक से अलग करता है। गीतांजलि श्री का विषय–चयन भिन्न प्रकार का है। 'हमारा शहर उस बरस' में वे सांप्रदायिक दंगों जैसा साहसी विषय उठाती हैं और अपनी तटस्थ शैली में उपन्यास के अंत तक उसका निर्वाह कर लेती हैं।"[8]

इक्कीसवीं सदी के आगमन के साथ स्त्री लेखन ने और अधिक विविध आयाम ग्रहण किए हैं। यह परंपरा अब केवल विरोध की नहीं, बल्कि आत्मस्वर और वैचारिक परिपक्वता की अभिव्यक्ति बन चुकी है। ममता कालिया का इस दिशा में मत हैं कि "उनकी राहें प्रशस्त हैं, आकाश अनंत है, दिशाएँ अनगिनत हैं। बीसवीं शताब्दी के महिला–लेखन को उसके उत्कर्ष–बिंदु तक ले जाना इक्कीसवीं शताब्दी का स्वप्न व संकल्प होना चाहिए।"[9]

इक्कीसवीं सदी के हिंदी स्त्री–लेखन में मनीषा कुलश्रेष्ठ की रचनात्मक उपस्थिति एक प्रखर और विशिष्ट स्वर के रूप में उभरती है। "मनीषा कुलश्रेष्ठ जी की रचनाओं में स्त्री मनोविज्ञान को बहुत ही प्रभावित ढंग से उकेरा गया है। एक ओर स्त्री के आधुनिक परिवेश को लेखिका ने अपना केन्द्र बिन्दु माना तो दूसरी ओर सामजिक यथार्थ से जूझती स्त्री, स्वावलम्बी स्त्रियों का वर्णन, परालम्बी स्त्रियों का अर्न्तद्वन्द्व तथा यौन शोषण का दर्द बखूबी प्रस्तुत किया है। समाज में रहकर किसी भी पात्र को आत्मसात कर अपनी रचना का रूप देकर लेखिका ने उपन्यास एवं कहानियों में जो कुछ भी रचा है, वह सराहनीय है।"[10] उनके लेखन में स्त्री–अस्मिता, देह और मन की जटिल संवेदनाएँ, सामाजिक यथार्थ, आदिवासी जीवन, मिथकीय प्रतीक और लोक–संस्कृति का गहरा अंतर्संबंध भी दिखाई देता है।

इक्कीसवीं सदी का हिंदी कथा साहित्य जिस परिवर्तन और पुनर्संरचना के दौर से गुजर रहा है, उसमें मनीषा कुलश्रेष्ठ जैसी लेखिकाएँ नए विमर्शों को सामने लाती हैं। उनकी कहानियाँ और उपन्यास स्त्री को केवल पीड़ित रूप में नहीं, बल्कि संवेदनशील, विवेकशील और स्वतंत्र व्यक्तित्व के रूप में प्रस्तुत करते हैं। शिगाफ, शालभंजिका, स्वप्नपाश, पंचकन्या, मल्लिका, सोफिया और त्रिमाया जैसे उपन्यास तथा बौनी होती परछाईं, गंधर्वगाथा, कुछ भी तो रूमानी नहीं, कठपुतलियाँ, अनामा, वन्या, केयर ऑफ स्वात घाटी और किरदार जैसे कहानी–संग्रह एक ओर स्त्री के निजी और सामाजिक संघर्षों को अभिव्यक्ति देते हैं, वहीं दूसरी ओर हिंदी साहित्य में शिल्पगत नवीनता और भाषिक प्रयोगों को भी सशक्त रूप में स्थापित करते हैं।

"एक रचनाकार के रूप में मनीषा कुलश्रेष्ठ लेखन को मात्र भाषा विलास न मानकर उसे मानवीय जीवन की अनिवार्य शर्त मानती हैं। अपने अनुभवों के व्यापक वृत्त में आए समय और सत्य के कुछ विशेष प्रसंगों और विचलित करने वाली स्थितियों को रचनात्मक विवेक और संवेदनात्मक घनत्व से कहानी में ढालकर वे पाठकों से जीवंत संवाद करती हैं।"[11]

वे स्त्री को केवल पीड़ित या विद्रोही रूप में नहीं, बल्कि स्मृति, प्रतिरोध और पुनर्निर्माण की चेतना से युक्त एक समग्र, सक्रिय सत्ता के रूप में प्रस्तुत करती हैं। मनीषा जी ने अपने महिला पात्र मर्यादाओं एवं संस्कारिक लोक से परे रखे। उनका कहना है, "जहां तक मेरी नायिकाओं की बात है.. उस संकीर्ण अर्थ में मर्यादित तो नहीं हैं वे ! मेरा अर्थ मतलब उन्होंने मर्यादा ओढ़ी हुई नहीं है! वे जैसी हैं वैसी हैं. फिर कोई मैं आदर्श कथाएँ या प्रेरक गाथाएँ तो लिखने नहीं बैठी हूँ ना ! दरअसल नैतिकता, मर्यादा, गरिमा.. इन तीनों चीज़ों को अलग तौर पर देखतीं हूँ.. मर्यादा मेरे लिए ओढ़ी हुई चीज़ है, इसके आगे गरिमा मेरे लिए सबसे महत्वपूर्ण गुण है.. एक स्त्री की गरिमा क्या है... नैतिकता के मापदण्ड सबके अपने अपने हर समाज, हर व्यक्ति के, तो मेरी नायिकाएँ ओढ़ी हुई मर्यादाएं, नैतिकता नहीं लिए हुए हैं... लेकिन हाँ.... परिवार संस्था में उनका विश्वास है... क्योकि मेरा स्वयं का विश्वास है।"[12]

मनीषा कुलश्रेष्ठ के कथा–संसार की शुरुआत से ही यह स्पष्ट हो जाता है कि वे केवल भावनात्मक स्त्री अनुभवों को बयान करने वाली लेखिका नहीं हैं। उनकी रचनाओं में गहरी समझ, सोच–विचार और समाज से जुड़ा दृष्टिकोण दिखाई देता है। वे अपने समय और समाज के सवालों को सजगता के साथ कथा में स्थान देती हैं। उनकी शुरुआती कहानियाँ जैसे प्रार्थना के बाहर, प्रेतकामना, बिगड़ैल बच्चे और क्या यही वैराग्य स्त्री मन की उलझनों और भावनात्मक गहराइयों को सरल लेकिन प्रभावी ढंग से सामने रखती हैं। इन कहानियों की नायिका कोई आदर्श या पूर्ण स्त्री नहीं होती, बल्कि एक साधारण स्त्री होती है जो अपने भीतर चल रहे संघर्ष, द्वंद्व और उलझनों से जूझते हुए धीरे–धीरे स्वयं को समझने की कोशिश करती है।

मनीषा कुलश्रेष्ठ का कथा–शिल्प पारंपरिक रैखिकता से आगे बढ़कर अनुभव और स्मृति की बहुस्तरीय संरचना पर आधारित है, जहाँ आंचलिकता और आधुनिकता का सहज संतुलन दिखाई देता है। प्रतीकों के सघन प्रयोग, भाव–संवेदना की गहराई और पात्रों के मनोवैज्ञानिक विस्तार के माध्यम से वे समकालीन स्त्री लेखन को एक नई दिशा प्रदान करती हैं।

मधु कांकरिया के अनुसारः "मनीषा की कहानियाँ स्त्री अस्मिता को सिर्फ भावनात्मक स्तर पर नहीं, राजनीतिक और सामाजिक संरचना के भीतर समझने की कोशिश करती हैं।"[13] रेखा सेठी के शब्दों में "मनीषा का कथा–संसार स्त्री की आवाज़ को उसकी संपूर्ण संवेदनात्मक शक्ति के साथ प्रस्तुत करता है। उनकी स्त्रियाँ जटिल, बहुआयामी और यथार्थ के बहुत करीब हैं।"[14]

निष्कर्ष

हिंदी साहित्य में स्त्री लेखन परम्परा को किसी एक ऐतिहासिक आंदोलन तक सीमित करके देखना न केवल अपूर्ण बल्कि भ्रामक

दृष्टि है। इस अध्ययन का सबसे महत्वपूर्ण निष्कर्ष यह है कि स्त्री लेखन की परंपरा विरोध की आकस्मिक प्रतिक्रिया नहीं, वरन् भारतीय सांस्कृतिक और साहित्यिक चेतना में निहित एक सतत् रचनात्मक प्रवाह है, जो समय–समय पर अपने रूप, भाषा और सरोकार बदलती रही है।

स्त्री लेखन का लक्ष्य केवल पितृसत्ता का प्रतिवाद करना नहीं रहा है, सामाजिक संरचनाओं के भीतर रहकर नैतिकता, गरिमा, और संबंधों की नई परिभाषाएँ गढ़ना भी है। स्वाधीनता–पूर्व स्त्री लेखन में जहाँ सुधार, आदर्श और सामाजिक संतुलन की आकांक्षा प्रमुख थी, वहीं स्वातंत्र्योत्तर और समकालीन लेखन में स्त्री स्वयं ज्ञान–निर्माता के रूप में उभरती है। यह बदलाव स्त्री को विषय से हटाकर विमर्श की केंद्रधुरी में स्थापित करता है।

अध्ययन यह भी उजागर करता है कि हिंदी स्त्री लेखन के मूल्यांकन में लंबे समय तक पुरुष–केंद्रित आलोचना–मानदंड प्रभावी रहे, जिसके कारण अनेक महत्वपूर्ण लेखिकाओं को "लोकप्रिय", "घरेलू" या "व्यावसायिक" कहकर सीमित कर दिया गया। किंतु मनीषा कुलश्रेष्ठ के रचना–संसार के विश्लेषण से प्राप्त होता है कि इक्कीसवीं सदी का स्त्री लेखन अब न तो केवल पीड़िता की कथा है, न ही एकांगी विद्रोह का घोष। उनके साहित्य की स्त्री प्रतिरोध, स्वीकार एवं पुनर्निर्माण तीनों का समन्वित रूप है। स्पष्टत: समकालीन स्त्री लेखन भारतीय सामाजिक संरचना के भीतर रहकर भी स्वतंत्र नैतिक और वैचारिक स्पेस निर्मित कर सकता है।

आज का स्त्री लेखन अब साहित्य की परिधि पर नहीं, उसके वैचारिक केंद्र में स्थित है। इसी केंद्रीयता को स्वीकार करना भविष्य की आलोचना और शोध की अनिवार्य शर्त होगी।

संदर्भ सूची

1. कालिया, ममता (संपा.) (2020), महिला लेखन के सौ वर्ष, लोक भारती प्रकाशन, प्रयागराज, भूमिका से
2. चतुर्वेदी, जगदीश्वर (2018), स्त्रीवादी साहित्य विमर्श, अनामिका पब्लिशर्स, दिल्ली, पृष्ठ 120
3. चतुर्वेदी, जगदीश्वर (2018), स्त्रीवादी साहित्य विमर्श, अनामिका पब्लिशर्स, दिल्ली, पृष्ठ 147
4. चतुर्वेदी, जगदीश्वर (2018), स्त्रीवादी साहित्य विमर्श, अनामिका पब्लिशर्स, दिल्ली, पृष्ठ 103
5. सुजाता (2021), आलोचना का स्त्री पक्ष, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ 231
6. कुमार, शशिप्रभा. भारतीय स्त्री विमर्श के आयाम, प्रभात प्रकाशन, 2017
7. कालिया, ममता (संपा.) (2020), महिला लेखन के सौ वर्ष, लोक भारती प्रकाशन, प्रयागराज, भूमिका से
8. कालिया, ममता (संपा.) (2020), महिला लेखन के सौ वर्ष, लोक भारती प्रकाशन, प्रयागराज, भूमिका से
9. कालिया, ममता (संपा.) (2020), महिला लेखन के सौ वर्ष, लोक भारती प्रकाशन, प्रयागराज, भूमिका से
10. मनीषा कुलश्रेष्ठ की कहानियों में स्त्री विमर्शः एक अध्ययन, शोध समागम, ISSN 2581–6918 (Online), volume–03, issue 04, oct–dec 2020, पृ. 1254
11. मीना बुद्धिराजा, समीक्षा लेख (बदलते वक्त के रूबरू किरदार), समालोचन वेब पत्रिका, अप्रैल 2018
12. फरगुदिया: साहित्य और सरोकार का समन्वय, साक्षात्कार (मनीषा कुलश्रेष्ठ से एक आत्मीय मुलाकात में हुई बातचीत), जनवरी 2013
13. कांकरिया, मधु, (2019), नई कहानी की नई नारी. राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली,
14. सेठी, रेखा, (2022), स्त्री अस्मिता के नवीन स्वरः मनीषा कुलश्रेष्ठ के सन्दर्भ में, समयिक साहित्य पत्रिका, खंड 17, अंक 2